# स्थितप्रज्ञ के लक्षण

रचयिता :

श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

प्राप्ति स्थान :

श्री राम शरणम् आश्रम, स्वामी सत्यानन्द मार्ग, जीन्द रोड, गोहाना (हरियाणा)-१३१३०१

**Sri Ram Sharnam Ashram, Swami Satyanand Marg, Jind Road, Gohana (Haryana), INDIA-131301**

**www.sriramsharnam.org**

# प्राक्कथन

श्रीमद्भगवद्गीता सारे संसार के साहित्य में एक सर्वसुन्दर ग्रन्थ है। इसका तत्त्वज्ञान निरुपम और उच्चतम है। इसका अध्यात्मवाद सर्वश्रेष्ठ तथा व्यवहार में बरतने योग्य है। ऐसे परम–पावन ग्रन्थ में एक भाग है, जिसमें स्थिरमति मनुष्य के लक्षण वर्णन किए गए हैं, जो प्रत्येक कार्यक्षेत्र में कार्य करने वाले जन के लिए स्मरण, धारण, आचरण में लाने और जीवन में बसाने योग्य हैं तथा परम उपयोगी हैं, वही भाग इस लघु पुस्तिका में प्रकाशित किया गया है। प्रत्येक नर–नारी को चाहिए कि वे इस भाग के श्लोकों को मननपूर्वक कण्ठाग्र करके प्रतिदिन उनका पावन पाठ किया करें।

महात्मा गांधी जी अपनी दोनों काल की प्रार्थना में से सायं समय की प्रार्थना में इन्ही स्थिरबुद्धि लक्षणों के श्लोकों का पाठ किया करते थे। जब मुझे पहली बार उनकी प्रार्थना में बैठने का शुभावसर प्राप्त हुआ, तो इन श्लोकों को सुनने के पश्चात, मेरे मन में यह विचार स्फुरित हुआ कि महात्मा जी एक बड़ी शक्तिशालिनी ब्रिटिश सरकार से अहिंसात्मक असहयोग समर लड़ रहे हैं और आप इस संग्राम की सेना के प्रधान संचालक तथा सेनापति हैं। इन्होनें जो भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के अन्तिम, ये उन्नीस श्लोक अपनी प्रार्थना में रखे हैं, जिनमें स्थिरमति मनुष्य के लक्षण वर्णित हैं, इसका यही प्रयोजन है कि सैनिक जन इस निराले समर में स्थिरमति बने रहें। वे दुःख से, पीड़ा से, बन्धन से, मार–ताड़ से और निरादर की मानस वेदना से व्याकुल न हो उठें, जी छोड़ न बैठें, पथ–भ्रष्ट न हो जायें और कायिक बल

का उपयोग करने पर न उतर आयें। स्वर्गीय महात्मा जी का सत्याग्रह–संग्राम जिस सफलता से चलता रहा और जो आशातीत विजय उस प्रधान सेनापति को प्राप्त हुई, वह संसार में सदा स्मरण रहेगी।

प्रत्येक व्यक्ति जीवन–संग्राम लड़ रहा है; संघर्ष के क्षेत्र में विचर रहा है; उसके भीतर भी भय, उद्वेग, लोभ–लालसा, क्रोध–कामना, वैर–विरोध, स्वार्थ, कायरता और अकर्मण्यता आदि के तरंग उठते रहते हैं, जो उसकी शान्ति को भंग कर देते हैं। पाप कर्मों की प्रवृति, पापवासनाएँ, दुर्गुण तथा दुष्ट–संस्कार पिशाचरूप बनकर पीछे पड़े रहते है, जो दुर्बल प्राणी को सबल, समर्थ तथा सफल बनने नहीं देते। ऐसे तथा अन्य अनेक अन्तरंग बहिरंग वैरियों को विजय करना स्थितप्रज्ञ बने बिना नहीं हो सकता। अपनी धारणा पर, ध्येय पर, धर्म पर, कर्त्तव्यकर्म पर व्रत नियम पर, प्रण–प्रतिज्ञा पर तथा जाति–समाज की सेवा पर सुदृढ़ बने रहना भी स्थिरबुद्धि बनने से ही बन सकता है। इसलिए प्रत्येक कर्मशील और स्वकल्याण के इच्छुक जन को स्थिरमति मनुष्य के लक्षणों के सब श्लोक हृदयंगम अवश्य कर लेने चाहिएँ। स्थिरबुद्धि बन जाने से जहाँ जगत का जीवन उच्च बन जाता है, वहाँ भगवान के वचनों में, स्थिरबुद्धि जन ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त होकर रहता है, उसमें ब्रह्मरूपता समा जाती है।

सत्यानन्द

**श्री भगवानुवाच–**

**1 2 4 3 5**
**यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।**

**6 11 10 7 9 8**
**तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।1।।**

श्री भगवान् ने कहा-

1 2 3 4 4 5 6
जिस समय तेरी बुद्धि मोहमयी दलदल को सर्वथा तर जायेगी, तब (तू)

7 8 9 10 11
सुननेयोग्य के और सुनेहुए के वैराग्य-विशेषज्ञान को प्राप्त होगा।

*जब तक मोह से, आसक्ति से बुद्धि पार न पा जाये तब तक धर्म–कर्म के, विवेक–विचार के और परमार्थ तत्त्वादि के सुनने योग्य और सुने हुए वाक्यों के विशेष ज्ञान को, यथार्थ मर्म को, समझना कठिन है। इसलिए तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के अर्थ वस्तुओं के मोह को, गहरी ममता को पार करना आवश्यक है।*

**1 2 4 8 7**
**श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।**

**5 6 3 9 10 11**
**समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।।2।।**

1 2 3 4 5
अनेक प्रकार के ग्रन्थों को सुनने से विचलित हुई तेरी बुद्धि, जब समाधि में
6 7 8 9
संशयरहित अवस्था में -अचल और निश्चल-सुस्थिर-स्थित हो जायेगी, तब (तू)
10 11
सममनः स्थितिरूप योग को पायेगा।

*अनेक प्रकार के मत–मतान्तर के ग्रन्थों के सुनने से बहुत जन संशयशील हो जाते हैं, विपरीत पथ पर पड़ कर सन्मार्ग को खो बैठते हैं और उनमें सत्यासत्य को निर्णय करने का सामर्थ्य नहीं रहता। इसलिए श्री भगवान ने अर्जुन को कहा–जब तेरी बुद्धि, पांथिक ग्रन्थों के सुनने से विचलित हो गई हुई सन्देह रहित समाधानस्थिति में अचल और निश्चल ठहर जाएगी, तब तू समभावरूप कर्मयोग को पाएगा।*

**अर्जुन उवाच–**

**3 4 5 2 1**
**स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।**
**6 7 8 9 10 12 11**
**स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।।3।।**

**अर्जुन ने कहाः–**

**1 2 3**

हे केशव समाधान में स्थित-संशयरहित अवस्था में स्थित-स्थिरबुद्धिवाले मनुष्य
4 5 6 7 8 9 10 11
का क्या लक्षण है? स्थिरबुद्धि जन कैसे बोलता है? कैसे बैठता है? और वह कैसे 12
चलता है?

**श्री भगवानुवाच–**

**6 2 5 4 1 3**
**प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।**
**10 9 8 11 12 7 13**
**आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।4।।**

1 2 3 4
श्री भगवान ने कहा-हे अर्जुन ! जिस समय मनुष्य, मन में रहने वाली सब
5 6 7 8 9 10 11
कामनाओं को त्याग देता है, उस में आत्मा से ही आत्मा में संतुष्टजन (अपने आप
12 13
में ही संतुष्टजन) स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

*स्थिरमति मनुष्य का प्रथम लक्षण है–सर्व मनोगत कामनाओं का त्याग। यहाँ कामनाओं से वे ही कामनाएँ समझनी चाहिएँ, जो अनुचित वासनारूप हैं, निरी मनोरथमाला हैं, कर्तव्यकर्म से बाहर, व्यर्थ कल्पना स्वरूप हैं और मनोराज्य–रचना है। ऐसी कामनाओं को जीत लेने से, मन के संयम से तथा वासना–विजय से मनुष्य स्थिरबुद्धि हो जाता है। वह धर्म में, अपने कर्तव्य कर्म में, ध्येय में, निश्चय में तथा विश्वास में अचल बना रहता है। उसकी बुद्धि सत्यपथ से विचलित नहीं होती। ऐसा आत्मसंयमी जन अपने आप से अपने आप में संतुष्ट रहा करता है।*

**1 2 3 4**
**दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।**
**5 7 6 8**
**वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।5।।**

1 2 3 4
दुःखों में जिसका मन उद्वेग रहित है, सुखों के भोगने में जिसकी लालसा
5 6
दूर हो गई है, जिस के राग, भय और क्रोध विनष्ट हो गए हैं, वह मुनि-वृत्तियों
7 8
का संयमी-स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

*इस श्लोक में वृत्तिसंयम स्थितबुद्धि का लक्षण कहा है। जो मनुष्य दुःखों में, कष्ट–क्लेशों में तथा विध्न–विपत्ति में व्याकुल मन बन जाये, चंचलचित्त हो उठे, शान्त न रहे, सुखों के भोग–उपभोग की लालसा बनाये रखे, सुखशील होकर काल व्यतीत करे, रागी, पक्षपाती, भीरु और क्रोधी हो; उसकी बुद्धि सत्य, न्याय और धर्मादि शुभ कर्मों के करने में स्थिर नहीं होती। इसलिए व्याकुलतादि वृत्तियों का वशीकार, स्थिरप्रज्ञ का दूसरा लक्षण कहा गया है।*

**1 2 3 4 5 7 6**
**यः सर्वत्रानेभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।**
**8 9 10 11 12 13 14**
**नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।6।**

1 2 3 4 5 6 7
जो मनुष्य सर्वत्र स्नेह-राग-रहित है, उस उस शुभ तथा अशुभ, वस्तु-संयोग को पा
8 9 10 11 12 13 14
कर, न शुभ का अभिनन्दन करता है और न अशुभ से द्वेष करता है उस की बुद्धि स्थिर है।

*इस श्लोक में, शुभाशुभ संयोग में हर्ष और द्वेष न करना, प्रसन्नता तथा घृणादि भाव न लाना, अनुकूल तथा प्रतिकूल व्यक्ति अथवा वस्तु के संयोग में सममनः स्थिति रख कर कर्तव्य कर्म करते जाना स्थिरबुद्धि का लक्षण बताया गया है। शुभ के संयोग को शुभ जानना और अशुभ के संयोग को अशुभ समझना तो शुभाशुभ का ज्ञान है जिसका होना कर्मयोगी के लिए अतीव उचित है, परन्तु शुभ में राग और अशुभ में द्वेष का होना बुद्धि की विषमता है, तथा समभाव का अभाव है। इसलिए जो जन शुभाशुभ के संयोग में समभाव से कर्तव्यपारायण बना रहे, राग–द्वेष में न फँसे, उसकी प्रज्ञा स्थिर होती है यह स्थिरप्रज्ञ का तीसरा लक्षण है।*

**2 10 1 3 5 6 4 9**
**यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्.गानीव सर्वशः।**

**7 8 11 12 13**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।7।।**

1 2 3 4 5 6 7
और जब यह मनुष्य जैसे कछुआ अपने अंगों को (समेट लेता है वैसे ही) इन्द्रियों को

8 9 10 11 12 13
इन्द्रियों के विषयों से, सब ओर से, समेट लेता है (तब) उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

*जैसे कछुआ, भयंकर वस्तु देखकर तुरन्त अपने अंगों को इकट्ठे कर लेता है, ऐसे ही जो जन अशुभ के देखने–सुनने आदि से अपनी इन्द्रियों को तुरन्त हटा लेता है, ऐसे पूर्ण संयमी की बुद्धि स्थिर होती है। पूर्ण इन्द्रिय–संयम का होना स्थिरमति–मनुष्य का चौथा लक्षण है।*

**केवल निराहार रहने से इन्द्रिय–संयम की सिद्धि नहीं होती इस पर श्री भगवान् ने कहा–**

**3 4 1 2**
**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।**

**5 7 8 6 9 10 11**
**रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।8।।**

1 2 3 4
विषयों के न भोगने वाले (न देखने, सुनने आदि से) मनुष्य के विषय तो निवृत

5
हो जाते हैं (परन्तु होते हैं) रस-स्वाद छोड़कर। उसका विषय-रस, निवृत्त नहीं

6 7 8 9 10 11
होता। परन्तु इस संयमशील का विषय-राग भी परमात्मा को साक्षात् कर के निवृत्त हो जाता है।

*आस्तिक भाववान् प्रभुपरायण आत्मज्ञानी का विषय–रस आप ही आप निवृत हो जाया करता है। उस अध्यात्मपथगामी में परमात्मा के प्रेम के प्रभाव से विषय–रस–लालसा नहीं रहती। इस श्लोक में भागवत् जन का इन्द्रियसंयम, विषयों से वैराग्य, सहज से हो जाना वर्णित किया है।*

**3 1 7 2 5 4**
**यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।**

**9 8 11 10 6**
**इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।6।।**

1 2 3 4 5 6 7
क्योंकि हे अर्जुन! इन्द्रियसंयम का यत्न करने वाले पण्डित पुरुष के मन को भी,

8 9 10 11
प्रमथन करने वाली इन्द्रियाँ बलात्कार से हरण कर लेती हैं।

**1 2 3 4 6 5**
**तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।**

**10 7 8 9 11 12 13**
**वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।10।।**

1
इसलिए (यह समझकर कि भगवत्प्रेम, इन्द्रिय-संयम का सर्वोत्तम साधन है) उन

2 3 4 5 6 7
सब इन्द्रियों को संयम में करके, कर्मयोगयुक्त जन मेरे परायण रहे। निश्चय से

8 9 10 11 12 13
जिस जन की इन्द्रियाँ वश में हैं। उसकी (ही) बुद्धि स्थिर है।

*पूर्व दो श्लोकों में यत्नशील पण्डित जन के लिए भी संयमी होने के वास्ते परमेश्वर परायणता आवश्यक बताई है। मोहमायामय जगत् में, कोरे प्रयत्न से इन्द्रिय–संयम करना, विषय–रस को जीतना, पदार्थों के भोगोपभोग की लालसा के वशीभूत न होना और अशुभ वस्तु के उपयोग से वैरागी बन जाना महाकठिन कार्य है, परन्तु भागवत अनुराग से वासना का, विषय–रस का तथा लालसा का विजय कर लेना बहुत सुगम है, इसलिए इन्द्रिय–संयम की सिद्धि में भगवद्भक्ति, आत्मज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।*

**विषयों के चिन्तन करते रहने से उनके संयोगादि दोषों की उत्पत्ति का क्रम वर्णन करते हुए भगवान् ने कहा–**

**2 1 3 5 4 6**
**ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्.स्तेषूपजायते।**

**7 9 8 10 11 12**
**सङ्.गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।11।।**

विषयों को चिन्तन करते रहने वाले पुरुष का उन विषयों में संग-संयोग, सम्बन्ध-हो जाता है, उन विषयों के भोगोपभोगरूप संग से (उनकी) कामना-अधिकाधिक प्राप्ति की तृष्णा-उत्पन्न हो जाती है, उस कामना से (बाधक कारण के प्रति) क्रोध उत्पन्न हो आता है।

**क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।**

**स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।12।।**

क्रोध से संमूढभाव-अज्ञान, अविवेक-हो जाता है, अज्ञान से स्मृति भ्रमयुक्त हो जाती है, स्मृति के भ्रष्ट हो जाने से विवेक-बुद्धि का नाश हो जाया करता है और बुद्धि के नाश से (वह जन भी अपने ध्येयपथ से) पतित नष्ट हो जाता है।

*ऊपर के दोनों श्लोकों में यह स्पष्ट किया गया है कि स्वार्थ का, पाप का तथा कुव्यसन का विष–बीज, सर्वप्रथम हृदयभूमि में चिन्तन के रूप में पड़ा करता है और फिर वासना का विशाल वृक्ष बनकर उस चिन्तनकर्ता प्राणी के नाश तक का कारण हो जाता है; इसलिए प्रथम पाप–कामना का ही त्याग करना उचित है जिससे विष–बीज अंकुरित न होने पाये। मनोगत कामना के, मनोराज्य के त्याग के पश्चात् दूसरे स्थान पर व्याकुलता आदि वृत्तियों का विजय करना कहा गया है। तीसरा लक्षण है शुभाशुभ, इष्टानिष्ट तथा अनुकूल प्रतिकूल व्यक्ति, वस्तु–संयोग में समननः स्थिति रखना और चौथा लक्षण है इन्द्रिय–संयम।*

**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।**

**आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।13।।**

और स्वाधीन आत्मा वाला जन, राग-द्वेष से रहित, अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता हुआ-देखना सुनना खान-पान आदि व्यवहार करता हुआ-प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

*आत्मा में संतुष्ट जन, पक्षपात से, राग–द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरता हुआ, सांसारिक कर्तव्य कर्म करता हुआ भी प्रसन्नता ही प्राप्त करता है, उसका अन्तःकरण स्वच्छ बना रहता है। व्यवहार से उसमें विषाद की मैल का लेप नहीं लगता।*

**1 3 4 2 5**
**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।**

**6 9 8 7 10**
**प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।14।।**

1 2
ऐसे प्रसाद-प्रसन्नभाव की प्राप्ति पर, इसके राग-द्वेषरहित, स्वाधीन आत्मा, इन्द्रियसंयमी
3 4 5 6 7 8 9
जन के-सब दुःखों का नाश हो जाता है। प्रसन्नचित जन की बुद्धि तुरन्त ही स्थिर हो जाती है।

*स्वाधीनात्मा, राग–द्वेषरहित, इन्द्रियसंयमी और प्रसन्नचित होना स्थिरप्रज्ञ का पंचम लक्षण है।*

**3 4 2 1 8 5 6 7**
**नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।**

**12 11 9 10 13 15 14**
**न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।।15।।**

1 2 3 4 5
और अयुक्त की-कर्मयोगरहित असंयमी जन की बुद्धि (स्थिर) नहीं होती, तथा
6 7 8 10
अयुक्त मनुष्य की (श्रेष्ठ) भावना भी नहीं होती। बिना श्रेष्ठ भावनावान को शान्ति
11 12 13 14 15
भी नहीं होती, तो फिर अशान्त जन को सुख कहाँ से हो सकता है।

**3 1 2 5 6 4 7**
**इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।**

**8 9 12 10 13 15 11 14**
**तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।।16।।**

1 2 3 4 5 6 7
निश्चय करके विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के साथ जो मन रहता है-विचरता
8 9 10 11 12
है, वह मन ही इस असंयमी की बुद्धि को ऐसे हरण कर लेता है-खींचकर ले जाता
13 14 15
है जैसे वायु जल में नाव को खींचकर ले जाता है।

*जैसे वायुवेग पानी में नाव को डांवाडोल बना देता है तथा पथ–भ्रष्ट कर देता है ऐसे ही इन्द्रियों के साथ रहने वाला मन भी बुद्धि को चंचल बनाए रखता है।*

**1 3 2 7 4**
**तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।**

**5 6 8 9 10**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।17।।**

1 2 3 4 5 6
इससे, हे महाभुज, जिस जन की, सब प्रकार इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय से स्व
7 8 9 10
वशीभूत की हुई होती है, उसकी बुद्धि स्थिर हुआ करती है। मन-बुद्धिसहित सर्व प्रकार इन्द्रिय-संयम स्थिरप्रज्ञ का लक्षण है।

**सृष्टि के सम्बन्ध में ज्ञानियों और अज्ञानियों का दृष्टिकोण।**

**3 1 2 4 6 5**
**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।**

**7 9 8 12 13 10 11**
**यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।18।**

1 2 3
अज्ञान-ग्रस्त सब प्राणियों की जो (अबोध अवस्था) रात्रि है, जिस अबोध अवस्था में सब प्राणी सोये पड़े हैं, सत्यासत्य-विवेक से, आत्मज्ञान 8से 9शून्य हैं। और सत्कर्म से
4 5 6 7
रहित हैं, उस में संयमी-स्थिरमति-मनुष्य जागता है। जिस अवस्था में-राग-द्वेष-वैर-विरोध कलह-कपट में केवल भोगोपभोग उद्देश्य में-सब प्राणी जागते हैं, इन्हीं को विनोद्देश्य
10 11 12 13
समझते हैं, तत्त्वदर्शी मुनि की-स्थिरप्रज्ञ संयमी की-वह रात है। वह दुर्भावों और दुष्कर्मो में रत नहीं होता।

*चंचलमति मनुष्यों का, अज्ञानियों का तथा मोह–मायारत जनों का सृष्टि के सम्बन्ध में दृष्टि बिन्दु होता है–केवल खान–पान, हास–विलास तथा स्वार्थ सिद्धि मात्र; परन्तु स्थिरबुद्धि ज्ञानी और संयमी जन सृष्टि को कर्मयोग, कर्तव्यपालन, आत्मोन्नति तथा तत्वज्ञान का स्थान समझते हैं।*

*ऐसे तत्वज्ञ, स्थिरबुद्धि संयमी मनुष्य की कामनाएँ आप ही आप पूर्ण हो जाया करती हैं और वह निर्विकार बना रहता है।*

**2 3**
**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं,**

**4 5 6 1**
**समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।**

**7 10 8 11 9**
**तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे,**

**12 13 14 15 16**
**स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।16।।**

1 2 3 4
जैसे सब ओर से परिपूर्ण होते हुए, अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र के प्रति नाना नदियों तथा नदों के 5 जल आप ही आप 6 प्रवेश करते रहते हैं, 7 वैसे ही 8 जिस स्थिरमति मनुष्य के प्रति 9 सब 10 भोगोपभोग सामग्रियाँ आप ही आप 11 प्रवेश करती हैं, परन्तु वह निर्विकार स्थितप्रज्ञ बना रहता है 12 वही, 13 शान्ति को 14 प्राप्त करता है, 15 न 16 कि कामों को चाहने वाला।

**5 4 1 3 2 9 6**
**विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।**

**7 8 10 11 12**
**निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।20।।**

1 2 3 4 5 6
जो पुरुष सब कामनाओं-मनोराज्य की रचनाओं को त्यागकर, इच्छारहित, ममताररहित, 7 अहंकाररहित 8 और लालसारहित हुआ कर्तव्यकर्म 9 करता है, 10 वह 11 शान्ति को लाभ कर 12 लेता है। अनासक्त जन, अभिमान और लोभरहित मनुष्यशान्ति को प्राप्त करता है।

**मनोराज्य के विजेता, वृत्ति–विजयी शुभाशुभ–संयोग में सममनः, जितेन्द्रिय और प्रसन्नचेता स्थिरबुद्धि संयमी की अवस्था और महिमा वर्णन करते हुए भगवान् ने कहा–**

**2 3 4 1 7 5 6 8**
**एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।**

**12 11 9 10 13 14**
**स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।21।।**

1 2 3 4
हे अर्जुन ! स्थिरमति मनुष्य की उपरिवर्णित यह ब्राह्मी स्थिति है-ब्रह्म में रहने की

5 6 7 8
अवस्था है। इस अवस्था को लाभ करके, फिर वह, न ही मोहित होता-न ही

9
अज्ञानग्रस्त होता, फिर वह ब्राह्मी अवस्था से विचलित नहीं हो पाता। अन्तकाल-मरण

10 11 12 13
के समय में-भी इस ब्राह्मी अवस्था में स्थित होकर (वह स्थिरबुद्धि मनुष्य) ब्रह्म के

14
निर्वाण पद को प्राप्त हो जाता है।

**सममनः स्थिति का स्थितप्रज्ञ जन, ब्रह्मसमाधि में ही होता है। इस ब्रह्म–संयोग को पाकर फिर वह पद से पतन नहीं पाता। यदि अन्त समय भी स्थिरबुद्धि की अवस्था प्राप्त हो जाये, तो उस जन का परम कल्याण हो जाता है।**

**सत्यानन्द**

------o------